ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 467-471
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :
डॉ. पुरुषोत्तम कुमार
सहायक प्राध्यापक, नागेन्द्र झा महिला महाविद्यालय, लहेरियासराय।
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

Corresponding Author :
डॉ. पुरुषोत्तम कुमार
सहायक प्राध्यापक, नागेन्द्र झा महिला महाविद्यालय, लहेरियासराय।
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा।

अभाव और दरिद्रता का मसीहा : ओम प्रकाश वाल्मीकि

शोध सारांश - ओम प्रकाश वाल्मीकि आधुनिक हिंदी साहित्य के उन शीर्ष रचनाकारों में से हैं, जिन्होंने अपने लेखन और जीवन संघर्ष से दलित विमर्श की दिशा और दशा को हमेशा के लिए बदल दिया। उनका व्यक्तित्व सिर्फ एक साहित्यकार का नहीं, बल्कि सामाजिक विसंगतियों और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने वाले एक जागृत योद्धा का था। जब हम ओम प्रकाश वाल्मीकि के संदर्भ में 'मसीहा' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो इसका अर्थ किसी अलौकिक उद्धारक से नहीं है। जबकि यहाँ मसीहा होने का अर्थ उस व्यक्ति से है जिसने अभाव, दरिद्रता और सामाजिक कुरुपता के सबसे वीभत्स रुप को न केवल स्वयं भोगा, बल्कि अपनी लेखनी को हथियार बनाकर उस नरक में जी रहे करोड़ों लोगों को मुक्ति और आत्मसम्मान का मार्ग दिखाया। जहाँ जन्मजात अभाव इंसान की अस्मिता को सोख लेते हैं, वहाँ वाल्मीकि जी ने उसी अंधकार को चीरकर एक ऐसी आभा बिखेरी जिसने पूरे हिंदी साहित्य के परिदृश्य को आलोकित कर दिया। वे एक ऐसे सूरज थे, जिन्होंने किसी वातानुकूलित कमरे में बैठकर 'दरिद्रता' पर शोध नहीं किया, बल्कि खुद उस आग में तपकर कंचन बने। जिन्होंने आंसुओं को लाचारी बनने देने के बजाय उन्हें 'प्रतिरोध की स्याही' में बदल दिया। वाल्मीकि ने साहित्य के मूल उद्देश्य, उसकी सामाजिक जिम्मेदारी और उसकी सार्थकता पर एक बेहद गंभीर पारंपरिक और शास्त्रीय प्रतिमानों को चुनौती देते हुए साहित्य को सीधे आम इंसान की ज़िंदगी से जोड़ा। वे लिखते हैं कि "साहित्य सिर्फ आनंद, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन से नहीं रचा जाता है। वहाँ मानवीय चिंताए, सरोकार, विकास यात्रा, संवेदनशीलता ही सर्वोपरि होने चाहिए, तभी साहित्य समाज का सही-सही आईना बन पाएगा। यदि साहित्य सामाजिक जीवन का हिस्सा नहीं बनता है, उसके सुख-दुःख, संघर्ष को रेखांकित नहीं करता है, तो वह सिर्फ बौद्धिक दुनिया का ही हिस्सा बनेगा, जमीनी सच्चाई से कई मीटर ऊपर जहाँ

मानवीय संवेदनाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं होता।" वे यह संदेश देना चाहते हैं कि साहित्य को 'अभिजात्य' और 'हवाई' होने से बचना चाहिए। साहित्य की सार्थकता इस बात में नहीं है कि वह कितनी क्लिष्ट भाषा या ऊंचे सिद्धांतों में लिखा गया है, बल्कि इस बात में है कि वह ज़मीन पर रहने वाले अंतिम व्यक्ति के आंसुओं और उसके संघर्ष को कितनी शिद्दत से समेट पाता है। यदि साहित्य में मानवीय संवेदना गायब है, तो वह केवल मृत शब्दों का ढेर है।

बीज शब्द : अभाव, दरिद्रता, मसीहा, साहित्य और समाज आदि।

ओम प्रकाश वाल्मीकि आधुनिक हिंदी साहित्य के उन शीर्ष रचनाकारों में से हैं, जिन्होंने अपने लेखन और जीवन संघर्ष से दलित विमर्श की दिशा और दशा को हमेशा के लिए बदल दिया। उनका व्यक्तित्व सिर्फ एक साहित्यकार का नहीं, बल्कि सामाजिक विसंगतियों और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने वाले एक जागृत योद्धा का था। जब हम ओम प्रकाश वाल्मीकि के संदर्भ में 'मसीहा' शब्द का प्रयोग करते हैं, तो इसका अर्थ किसी अलौकिक उद्धारक से नहीं है। जबकि यहाँ मसीहा होने का अर्थ उस व्यक्ति से है जिसने अभाव, दरिद्रता और सामाजिक कुरुपता के सबसे वीभत्स रुप को न केवल स्वयं भोगा, बल्कि अपनी लेखनी को हथियार बनाकर उस नरक में जी रहे करोड़ों लोगों को मुक्ति और आत्मसम्मान का मार्ग दिखाया। जहाँ जन्मजात अभाव इंसान की अस्मिता को सोख लेते हैं, वहाँ वाल्मीकि जी ने उसी अंधकार को चीरकर एक ऐसी आभा बिखेरी जिसने पूरे हिंदी साहित्य के परिदृश्य को आलोकित कर दिया। वे एक ऐसे सूरज थे, जिन्होंने किसी वातानुकूलित कमरे में बैठकर 'दरिद्रता' पर शोध नहीं किया, बल्कि खुद उस आग में तपकर कंचन बने। जिन्होंने आंसुओं को लाचारी बनने देने के बजाय उन्हें 'प्रतिरोध की स्याही' में बदल दिया। वाल्मीकि ने साहित्य के मूल उद्देश्य, उसकी सामाजिक जिम्मेदारी और उसकी सार्थकता पर एक बेहद गंभीर पारंपरिक और शास्त्रीय प्रतिमानों को चुनौती देते हुए साहित्य को सीधे आम इंसान की ज़िंदगी से जोड़ा। वे लिखते हैं कि "साहित्य सिर्फ आनंद, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रयोजन से नहीं रचा जाता है। वहाँ मानवीय चिंताए, सरोकार, विकास यात्रा, संवेदनशीलता ही सर्वोपरि होने चाहिए, तभी साहित्य समाज का सही-सही आईना बन पाएगा। यदि साहित्य सामाजिक जीवन का हिस्सा नहीं बनता है, उसके सुख-दुःख, संघर्ष को रेखांकित नहीं करता है, तो वह सिर्फ बौद्धिक दुनिया का ही हिस्सा बनेगा, जमीनी सच्चाई से कई मीटर ऊपर जहाँ मानवीय संवेदनाओं का कोई अस्तित्व ही नहीं होता।"[1] वे यह संदेश देना चाहते हैं कि साहित्य को 'अभिजात्य' और 'हवाई' होने से बचना चाहिए। साहित्य की सार्थकता इस बात में नहीं है कि वह कितनी क्लिष्ट भाषा या ऊंचे सिद्धांतों में लिखा गया है, बल्कि इस बात में है कि वह ज़मीन पर रहने वाले अंतिम व्यक्ति के आंसुओं और उसके संघर्ष को कितनी शिद्दत से समेट पाता है। यदि साहित्य में मानवीय संवेदना गायब है, तो वह केवल मृत शब्दों का ढेर है।

वाल्मीकि जी की प्रतिबद्धता हैरान कर देने वाली थी। वे साहित्य को मनोरंजन या केवल नाम कमाने का जरिया नहीं मानते थे, बल्कि उसे एक सामाजिक जिम्मेदारी की तरह जीते थे। "वाल्मीकि जी जब अपनी स्टडी में पहुंचते तो इस तरह अपने अध्ययन में व्यस्त हो जाते जैसे कोई बच्चा पहली बार बोर्ड की परीक्षा देने जा रहा हो। अपने काम के प्रति उनकी प्रतिबद्धता हैरान कर देने वाली थी।"[2]

बात सन् 1985 ई. की है। जब उनका तबादला चंद्रपुर, महाराष्ट्र के ऑर्डनेंस फैक्टरी से देहरादून में हो गया था। देहरादून आने पर उन्हें कोई किराए का घर नहीं मिल रहे थे। घर नहीं मिलने का एक मात्र कारण उनकी 'जाति' थी। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी जहाँ-कहीं भी जाते, उनसे पहले उनकी जाति वहां पहुंच जाती थी। जिस गल्ली-मुहल्ले भी जाते वहाँ के लोग साफ-साफ कह देते "ना जी, किसी चूहड़े-चमार को हम मकान नहीं देंगे।"3 यह केवल एक

पंक्ति नहीं है, बल्कि भारतीय समाज की उस गहरी और कड़वी सच्चाई का दस्तावेज़ है जिससे ओम प्रकाश वाल्मीकि जैसे अनगिनत लोगों को अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में दो-चार होना पड़ता है। वास्तविक जीवन में यह पीड़ा बार-बार उभर कर आती है कि कोई दलित चाहे कितनी भी ऊंची शिक्षा पा ले, कितना भी बड़ा प्रशासनिक अधिकारी बन जाए, समाज की सनातनी जातिवादी चेतना उसे उसके 'नाम' और 'जाति' से आगे बढ़कर देखने को तैयार नहीं होती। उस समय उनके मित्र उन्हें उनकी जाति बदलने का सुझाव देते हैं, लेकिन ओमप्रकाश वाल्मीकि को दर-दर ठोकर खाना पसंद था पर अपनी जाति छुपाना उन्हें कतई मंजूर नहीं। वे अपने मित्रों को कहते हैं "मैं झूठ बोलकर मकान नहीं लूंगा... चाहे जो भी स्थिति रहे। यदि आधुनिक कहे जानेवाले पढ़े-लिखे लोगों के इस शहर देहरादून की यह हालत है तो छोटे शहरों में तो दलितों को मकान मिलने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। मेरे जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति को यदि यह शहर स्वीकार करने को तैयार नहीं तो शर्मिन्दा मुझे नहीं इस शहर को होना चाहिए।"[4]

अपने साक्षात्कार के अंतिम संवाद में ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं कि अपने स्वभाव, मानवीय संबंधों के प्रति अपने दृष्टिकोण और अपनी जीवन-दृष्टि को बहुत ही सहज, ईमानदार और व्यावहारिक रूप में व्यक्त चाहिए। मुझे "लोगों से मिलना जुलना बहुत पसंद है। मैं अलग-अलग लोगों से मिलता हूँ। मुझे समय लगता है किसी से दोस्ती करने में, लेकिन जब एक बार हो जाती है तो बहुत लम्बी चलती है। अपनी तरफ से मैं नहीं तोड़ता हूँ, उधर से टूट जाए तो टूट जाए।"[5] यह उनके खुले और जीवंत व्यक्तित्व को दर्शाता है। एक लेखक या सामाजिक चिंतक के लिए विविध पृष्ठभूमि के लोगों से मिलना बहुत ज़रूरी होता है, क्योंकि हर इंसान अपने साथ अनुभवों का एक नया संसार लेकर आता है। वे लोगों से कटकर अकेलेपन में रहने वाले व्यक्ति नहीं हैं, बल्कि समाज के बीच धड़कने वाले इंसान हैं। वे एक सामाजिक और मित्रवत इंसान हैं, जो नए लोगों से मिलने का स्वागत करते हैं। रिश्तों के मामले में वे गंभीर, वफादार और धैर्यवान हैं, लेकिन साथ ही वे तटस्थ और आत्मसम्मान से भरपूर भी हैं। वे संबंधों को थोपने में नहीं, बल्कि दोनों तरफ की बराबरी और सम्मान पर टिके होने में विश्वास रखते हैं। "रिश्ते बनाने में विश्वास है मेरा, जब मेरे रिश्ते किसी से बन जाते हैं तो मैं उसे लंबे तक खींच ले जाता हूँ। अगर कभी गलतफहमी हो गई तो मैं कोशिश करता हूँ कि वापस आ जाये।"[6]

वास्तव में ओमप्रकाश वाल्मीकि आदर्श व्यक्तित्व के धनी थे। वे शराब, पान, तम्बाकू आदि हानिकारक पदार्थों से हमेशा दूर रहते थे। अपने एक साक्षात्कार में वे कहते हैं "खाने पीने में तो मैं बिल्कुल शूद्र व्यक्ति हूँ। मांसाहारी खाना मुझे बहुत पसंद है। अब तो बीमार हो गया हूँ, आगे खा पाऊँगा कि नहीं, यह नहीं कह सकता। बीमारी से बाहर आने के बाद भी नॉनवेज मुझे बेहद पसंद रहेगा। नॉनवेज में सबकुछ खा लेता हूँ लेकिन एक चीज नहीं खा पाता हूँ बीफ। बीफ ना खाने के पीछे मेरा कोई धार्मिक कारण नहीं है। सिर्फ इतना ही है, कि मेरे परिवार में नहीं खाया जाता था। उसको छोड़ जो भी आता है, मैं खा लेता हूँ। मेरे पास कोई बंधन नहीं है।"[7] एक ऐसे समाज में जहाँ रसोई और खाना बनाने की पूरी ज़िम्मेदारी केवल महिलाओं पर डाल दी जाती है, वहाँ एक पुरुष साहित्यकार का सहजता से यह कहना कि "मैं स्वयं खाना बना लेता हूँ" उनकी प्रगतिशील और स्त्री-पुरुष की बराबरी की चेतना को दिखाता है। वे घर के भीतर के श्रम-विभाजन में पितृसत्तात्मक अहंकार को आड़े नहीं आने देते। वे कहते हैं "बना लेता हूँ जैसे चिकन, मटन, फिश। फिश तो मैं बहुत अच्छी बनाता हूँ। फिश मुझे पसंद है, मिसेज को भी पसंद है- रोहू ज्यादा पसंद है। मैं तो सब तरह की फिश खा लेता हूँ, मुझे कांटे वाली फिश बहुत पसंद है। जिसमें ज्यादा कांटे होते हैं, वह बहुत टेस्टी होती है। मिसेज को ज्यादा कांटे वाली पसंद नहीं है। मैंने जब उनको खाना सिखाया था, तब शायद रोहू से ही शुरुआत की थी इसलिए रोहू उन्हें पसंद है। समुद्री मछलियां मुझे बहुत पसंद हैं।"[8] भारतीय समाज में, विशेषकर

हिंदी पट्टी के साहित्यिक जगत में, लंबे समय तक 'सात्विकता' और 'शुद्धता' के नाम पर शाकाहार को ही श्रेष्ठ और संभ्रांत माना जाता रहा। वाल्मीकि जी ने जब खुलकर अपने मांसाहार और मछली-प्रेम की बात की, तो यह उनकी उस चेतना का हिस्सा है जो तथाकथित 'अभिजात्य सांस्कृतिक मानदंडों' को चुनौती देती है।

साहित्यिक चिंतन ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। साहित्य के प्रति उनका चिंतन, उन्हें अन्य साहित्यकारों से अलगाता है। साहित्य कैसा हो? और उनका उद्देश्य क्या हो? इस पर वे अपना विचार व्यक्त करते हैं। वे साहित्य का अर्थ समग्रता से लेते थे। उनका मानना था कि साहित्य वही है जो सबको समान दृष्टि से देखता है। जिसमें समरसता का भाव हो। वे साहित्य को एक नई दिशा, नया आयाम देना चाहते थे। वे साहित्य को साधारण जन-मानस से जोड़ने की हिमाकत रखते थे। वे साहित्य को नये सौन्दर्य शास्त्र से जोड़ते है। ओमप्रकाश वाल्मीकि साहित्य को रसास्वादन की वस्तु नहीं मानते थे। उनका मानना हैं "मेरे लिए कविता आनंद या रसास्वादन की चीज नहीं है, बल्कि कविता के माध्यम से मानवीय पक्षों को उजागर करते हुए मनुष्यता के सरोकारों और मनुष्यता के पक्ष में खड़ा होना है।"[9]

वाल्मीकि जी यह संदेश दे रहे हैं कि सच्चा साहित्य बंद कमरों में बैठकर केवल दार्शनिक सिद्धांतों या कल्पना के सहारे नहीं रचा जा सकता। साहित्य तब जीवंत होता है जब लेखक अपने समय और समाज के यथार्थ से सीधे टकराता है। जो लेखक अपने परिवेश की चीखों, उसके संघर्षों और उसकी कुरुपताओं के प्रति संवेदनशील नहीं है, वह कभी सच्चा रचनाकार नहीं हो सकता। "लेखक महापुरुष बनकर पैदा नहीं होता, वह आर्दशवादी, आध्यात्मवादी, साम्यवादी बनकर नहीं जन्मता। वह अपनी सामाजिक वातावरण में सांस लेकर अपने परिवेश से प्रतिक्रिया करता है।"[10] वे मानते थे कि साहित्यकार कोई दैवीय रचना नहीं है जो पहले से तय सिद्धांतों को समाज पर थोपने के लिए आता है। विचारधाराएं बाद में आती हैं; सबसे पहले लेखक एक हाड़-मांस का इंसान होता है जो अपने आस-पास की दुनिया को देखता और महसूस करता है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि जी का यह अत्यंत प्रखर और भावुक वक्तव्य केवल उनकी व्यक्तिगत राय नहीं है, बल्कि यह दलित साहित्य का घोषणापत्र है। "हजारों साल की घुटन, अंधेरे में गूंजती चित्कार और भीषण यातनाओं से मुक्त होकर जब कोई खुली हवा में सांस लेने की कोशिश करता है तो उसके सामने सिर्फ चमत्कृत कर देने वाली रोशनी की चकाचौंध ही नहीं होती, उसकी अपनी अस्मिता का सवाल और पहचान भी उतनी ही तीव्र होती है। अज्ञानता और उत्पीड़न की पर्तों को तोड़ कर जब पुस्तकों में छपे 'शब्दों' से साक्षात्कार हुआ, तो मेरे जैसे अनेक दलित लेखकों की अपनी-अपनी अभिव्यक्ति फूटकर बाहर आई, मूक वेदनाएं तड़प उठीं और आक्रोशित चेतना साहित्य की एक ऐसी धारा के रूप में प्रवाहित हुई जिसमें मुक्ति संघर्ष की अनुभूतियों का प्रचंड, दग्ध आवेग तो है ही, संवेदनाओं के सूक्ष्म प्रस्तुति भी है।"[11] लेखक की सबसे बड़ी मान्यता यह है कि शिक्षा और साहित्य ही वह ज़रिया हैं जो किसी भी दबे-कुचले समाज को उसकी खोई हुई मानवीय गरिमा वापस दिला सकते हैं। जब शोषित समाज खुद लिखना शुरू करता है, तो वह इतिहास की रुढ़ियों को बदलकर अपने लिए एक नए और सम्मानजनक भविष्य का रास्ता खुद तैयार करता है।

निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि ओम प्रकाश वाल्मीकि अभाव और दरिद्रता के मसीहा हैं चुकी उन्होंने पीड़ित मानवता को केवल सांत्वना नहीं दी, बल्कि उन्हें अपने हक के लिए लड़ना, सलीके से खड़े होना और व्यवस्था की आंखों में आंखें डालकर सच बोलना सिखाया। उनका साहित्य आज भी शोषितों के लिए एक वैचारिक ढाल और

मार्गदर्शक की तरह काम कर रहा है।

संदर्भ :

1. ओम प्रकाश वाल्मीकि, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या-30
2. गौरीनाथ, भारतीय दलित साहित्य और ओमप्रकाश वाल्मीकि, अन्तिका प्रकाशन, 2015, पृष्ठ संख्या -113
3. ओम प्रकाश वाल्मीकि, जूठन, खंड दूसरा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या -29
4. वही पृष्ठ संख्या -29
5. बनास जन, अंतिम संवाद, 2014, पृष्ठ संख्या - 57
6. वही पृष्ठ संख्या -57
7. वही पृष्ठ संख्या -57
8. वही पृष्ठ संख्या -58
9. ओम प्रकाश वाल्मीकि, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या-31
10. नेमीचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली, खंड-5, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,2009, पृष्ठ संख्या -141
11. ओम प्रकाश वाल्मीकि, मुख्यधारा और दलित साहित्य, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृष्ठ संख्या-11

•